

समकालीन हिंदी कथा-साहित्य में वृद्ध-विमर्श और पारिवारिक संरचना

डॉ. कृष्ण कुमार पाल

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, का. सु. साकेत पी. जी. कॉलेज, अयोध्या (उ. प्र.)

Email: kpall190@gmail.com



Received 07 August 2026

Accepted 12 August 2026

Published 22 August 2026

Corresponding Author:

डॉ. कृष्ण कुमार पाल

Email: kpall190@gmail.com

DOI: <https://doi.org/10.64880/pcjaict.v1i4.07>

Funding: This research received no specific grant from any funding agency in the public, commercial, or not-for-profit sector.

Copyright: © 2026 The Author(s).



This is an open access article under the [Creative Commons Attribution-Noncommercial 4.0 International License](https://creativecommons.org/licenses/by-nc/4.0/).

OPEN ACCESS

सारांश:

समकालीन हिंदी कथा-साहित्य में वृद्ध-विमर्श, सामाजिक परिवर्तन, पारिवारिक विघटन और बदलते मानवीय संबंधों को समझने का एक महत्वपूर्ण माध्यम है। भारतीय समाज में वृद्ध व्यक्ति लंबे समय तक परिवार के अनुभव, परंपरा, संस्कार और निर्णय-प्रक्रिया के केंद्र में रहा है किंतु नगरीकरण, औद्योगीकरण, वैश्वीकरण, उपभोक्तावाद, रोजगारगत गतिशीलता तथा संयुक्त परिवार के विघटन ने उसकी पारंपरिक भूमिका को प्रभावित किया है। परिणामस्वरूप वृद्धावस्था केवल जैविक जीवन-चक्र की अवस्था न रहकर सामाजिक असुरक्षा, अकेलेपन, उपेक्षा, आर्थिक निर्भरता, पीढ़ी-अंतराल और आत्मसम्मान के संकट से जुड़ा प्रश्न बन गई है।¹ समकालीन हिंदी कथा-साहित्य ने इस परिवर्तन को संवेदनात्मक और यथार्थपरक ढंग से अभिव्यक्त किया है। प्रेमचंद की 'बूढ़ी काकी' से लेकर उषा प्रियंवदा की 'वापसी', भीष्म साहनी की 'चीफ की दावत', उदय प्रकाश की 'छप्पन तोले का करधन' तथा इक्कीसवीं सदी के विभिन्न कथा-लेखकों की रचनाओं तक वृद्ध जीवन के अनेक रूप दिखाई देते हैं।² प्रस्तुत शोधपत्र का उद्देश्य समकालीन हिंदी कथा-साहित्य में वृद्ध विमर्श के स्वरूप, बदलती पारिवारिक संरचना के साथ उसके संबंध, वृद्ध पात्रों की मनोवैज्ञानिक स्थिति तथा साहित्य द्वारा निर्मित प्रतिरोध और मानवीय चेतना का विश्लेषण करना है।

बीज शब्द: वृद्ध विमर्श, परिवार, अकेलापन, उपभोक्तावाद, हिंदी कथा-साहित्य।

प्रस्तावना:

वर्तमान समय सामाजिक और सांस्कृतिक संक्रमण का समय है। विज्ञान और तकनीक के विस्तार, नगरीकरण, शिक्षा, रोजगार के नए अवसर तथा वैश्वीकरण ने भारतीय समाज की संरचना में व्यापक परिवर्तन किए हैं। इन परिवर्तनों का सबसे गहरा प्रभाव परिवार जैसी आधारभूत सामाजिक संस्था पर पड़ा है। पारंपरिक भारतीय समाज में संयुक्त परिवार केवल निवास की व्यवस्था नहीं थी बल्कि वह आर्थिक सहयोग, भावनात्मक सुरक्षा, सामाजिक नियंत्रण, संस्कार-संचरण और पीढ़ियों के सह-अस्तित्व की संस्था थी। वृद्धजन इस व्यवस्था में अनुभव और सामाजिक स्मृति के प्रतिनिधि माने जाते थे। किंतु,

आधुनिक जीवन-शैली में परिवार के आकार और कार्य-प्रणाली दोनों में परिवर्तन आया है। संयुक्त परिवार के स्थान पर एकल परिवारों का विस्तार हुआ है और वृद्ध माता-पिता की भूमिका भी पुनर्परिभाषित हुई है।³

वृद्ध विमर्श इसी बदलते सामाजिक संदर्भ की साहित्यिक अभिव्यक्ति है। साहित्य में वृद्ध व्यक्ति को केवल दया के पात्र के रूप में देखने के बजाय उसकी सामाजिक उपयोगिता, आत्मसम्मान, इच्छाओं, स्मृतियों, मानसिक संघर्षों और अधिकारों को समझने का प्रयास किया गया है। समकालीन हिंदी कथा-साहित्य में वृद्ध पात्र अब कथा के हाशिए पर स्थित निष्क्रिय चरित्र नहीं हैं; वे बदलते सामाजिक मूल्यों के साक्षी और कभी-कभी उन मूल्यों के आलोचक भी हैं।⁴ इस दृष्टि से वृद्ध विमर्श को परिवार के विघटन से अलग करके नहीं देखा जा सकता है। परिवार बदलता है तो उसमें वृद्ध की भूमिका भी बदलती है। पहले जिस व्यक्ति का अनुभव परिवार के निर्णयों का आधार होता था, वही आधुनिक परिवार में कभी-कभी आर्थिक रूप से अनुपयोगी अथवा घरेलू व्यवस्था में हस्तक्षेप करने वाला व्यक्ति समझा जाने लगता है। यह परिवर्तन साहित्य में अत्यंत मार्मिक रूप में व्यक्त हुआ है।

वृद्ध विमर्श और साहित्य:

‘विमर्श’ का अर्थ किसी प्रश्न या समस्या को अनेक कोणों से विचार के केंद्र में लाना होता है। साहित्यिक विमर्श का उद्देश्य केवल किसी वर्ग की पीड़ा का चित्रण करना नहीं, बल्कि उसके सामाजिक कारणों, सत्ता-संबंधों, अधिकारों और मानवीय गरिमा को प्रश्नांकित करना भी है। वृद्ध विमर्श इसी अर्थ में वृद्ध व्यक्ति को सामाजिक चेतना के केंद्र में स्थापित करता है।⁵ भारतीय समाज में वृद्धों की स्थिति परंपरागत रूप से सम्मान और संरक्षण से जुड़ी रही है। परिवार में वरिष्ठ व्यक्ति को अनुभव और परंपरा का वाहक माना जाता था। किंतु आधुनिकता के प्रभाव में अनुभव की जगह दक्षता, परंपरा की जगह उपयोगिता और सामूहिकता की जगह व्यक्तिवाद को अधिक महत्त्व मिलने लगा है। इससे वृद्धों की सामाजिक स्थिति में परिवर्तन आया है। समकालीन आलोचना में इस स्थिति को परिवार के विघटन, उपभोक्तावाद और पीढ़ीगत दूरी के साथ जोड़ा गया है।⁶

हिंदी कथा-साहित्य में वृद्ध जीवन का चित्रण नया नहीं है। प्रेमचंद की ‘बूढ़ी काकी’ में वृद्ध स्त्री की भूख, उपेक्षा और पारिवारिक निर्भरता का अत्यंत मार्मिक चित्र मिलता है।⁷ किंतु समकालीन दौर में वृद्ध विमर्श का स्वरूप अधिक व्यापक हुआ है। अब इसमें केवल शारीरिक असमर्थता या आर्थिक निर्भरता नहीं, बल्कि अकेलापन, मानसिक अवसाद, सामाजिक अलगाव, संपत्ति संबंधी संघर्ष, पीढ़ीगत संवादहीनता, सेवानिवृत्ति के बाद की पहचान और आत्मसम्मान जैसे प्रश्न भी सम्मिलित हैं। इस प्रकार वृद्ध विमर्श सामाजिक संरचना के परिवर्तन को व्यक्ति के अनुभव के स्तर पर समझने का साहित्यिक माध्यम है।

पारिवारिक संरचना और वृद्धों की स्थिति:

भारतीय परिवार संरचना में परिवर्तन वृद्ध विमर्श की केंद्रीय पृष्ठभूमि है। संयुक्त परिवार में परिवार की आर्थिक और भावनात्मक व्यवस्था अनेक सदस्यों पर आधारित होती थी। वृद्ध व्यक्ति परिवार के संसाधनों पर अकेले निर्भर नहीं होते थे और बच्चों तथा अन्य सदस्यों के साथ उनका निरंतर संवाद बना रहता था। आधुनिक एकल परिवार में पति-पत्नी और बच्चों की सीमित इकाई प्राथमिक बन गई है। रोजगार के लिए शहरों और महानगरों की ओर पलायन तथा विदेशों में बसने की प्रवृत्ति ने इस दूरी को और बढ़ाया है।⁸

बदलती पारिवारिक संरचना को केवल नैतिक पतन के रूप में देखना पर्याप्त नहीं होगा। इसके पीछे अनेक आर्थिक और सामाजिक कारण भी विद्यमान हैं। महानगरीय जीवन की महंगी व्यवस्था, छोटे आवास, दोनों पति-पत्नी का नौकरी करना, बच्चों की शिक्षा, व्यावसायिक गतिशीलता और व्यक्तिगत स्वतंत्रता की आकांक्षा परिवार के स्वरूप को प्रभावित करते हैं। इसलिए वृद्धों की समस्या का विश्लेषण करते समय नई पीढ़ी को केवल दोषी ठहराने के बजाय व्यापक सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों को समझना आवश्यक है। फिर भी समस्या तब गंभीर होती है जब परिवार की संरचनात्मक सीमाएँ भावनात्मक उपेक्षा में बदल जाती हैं। वृद्ध व्यक्ति को यदि निर्णयों से बाहर कर दिया जाए, उसकी बात को ‘पुरानी सोच’ कहकर खारिज कर दिया जाए और

उसकी उपस्थिति को केवल आर्थिक या घरेलू उपयोगिता के आधार पर आँका जाए तो उसके आत्मसम्मान पर गहरा आघात होता है।⁹ समकालीन कथा-साहित्य इसी बिंदु को विशेष रूप से रेखांकित करता है। परिवार में रहते हुए भी वृद्ध व्यक्ति अकेला हो सकता है। इसीलिए आधुनिक वृद्धावस्था का सबसे बड़ा संकट 'अकेले रहना' नहीं बल्कि 'अपनों के बीच अकेला होना' है।

परिवार में उपस्थित होकर भी अनुपस्थित वृद्ध:

उषा प्रियंवदा की प्रसिद्ध कहानी 'वापसी' वृद्ध विमर्श और बदलती पारिवारिक संरचना को समझने की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण रचना है।¹⁰ कहानी के केंद्र में गजाधर बाबू हैं, जो लंबे समय तक नौकरी के कारण परिवार से अलग रहते हैं और सेवानिवृत्ति के बाद इस आशा के साथ घर लौटते हैं कि अब वे परिवार के साथ शेष जीवन सुखपूर्वक बिताएंगे। लेकिन घर लौटने के बाद उन्हें अनुभव होता है कि परिवार की संरचना और जीवन-शैली में उनका स्थान पहले जैसा नहीं रहा है।¹¹

गजाधर बाबू का संकट केवल पारिवारिक उपेक्षा का संकट नहीं है; यह पहचान का संकट भी है। नौकरी के दौरान वे परिवार के आर्थिक आधार थे। उनके श्रम से परिवार की आवश्यकताएँ पूरी होती थीं। सेवानिवृत्ति के बाद जब उनकी आर्थिक भूमिका कम हो जाती है तो उनकी सामाजिक उपयोगिता भी परिवार की दृष्टि में कम होती दिखाई देती है। इस प्रकार कहानी आर्थिक उपयोगिता और मानवीय मूल्य के बीच आधुनिक समाज के अंतर्विरोध को उद्घाटित करती है। 'वापसी' में घर एक भौतिक स्थान है किंतु, गजाधर बाबू के लिए वह भावनात्मक आश्रय नहीं रह जाता है। परिवार के सदस्य अपने-अपने संसार में व्यस्त हैं। उनके लिए पिता की उपस्थिति एक अतिरिक्त व्यवस्था की तरह दिखाई देती है। इस प्रकार कहानी में 'घर' और 'परिवार' के बीच का अंतर स्पष्ट होता है। घर में स्थान मिल जाना और परिवार में भावनात्मक स्थान मिल जाना दो अलग बातें हैं। कहानी का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि वृद्ध व्यक्ति को केवल कमजोर और असहाय मानने के बजाय उसकी भावनात्मक आकांक्षाओं को सामने लाया गया है। गजाधर बाबू चाहते हैं कि परिवार उन्हें केवल कमाने वाले व्यक्ति के रूप में नहीं बल्कि स्नेह और सहभागिता की आवश्यकता रखने वाले मनुष्य के रूप में स्वीकार करे।¹²

वृद्ध एवं उपयोगितावाद:

भीष्म साहनी की 'चीफ की दावत' में वृद्ध माँ का चरित्र आधुनिक मध्यवर्गीय मानसिकता और सामाजिक दिखावे के बीच वृद्ध व्यक्ति की स्थिति को उजागर करता है।¹³ शामनाथ के लिए उसकी माँ भावनात्मक संबंध का केंद्र होने के बजाय सामाजिक प्रतिष्ठा में बाधा बनती हुई दिखाई देती है। वह चाहता है कि उसकी माँ की उपस्थिति उसके आधुनिक और प्रतिष्ठित व्यक्तित्व को प्रभावित न करे। कहानी में विडंबना यह है कि जिस माँ ने जीवनभर परिवार को संभाला, वही आधुनिक सामाजिक प्रदर्शन के समय 'छिपाए जाने योग्य' व्यक्ति बन जाती है। यहाँ वृद्धावस्था का संकट आर्थिक नहीं बल्कि प्रतिष्ठात्मक और सांस्कृतिक है। वृद्ध व्यक्ति का पारंपरिक जीवन और उसकी सादगी आधुनिक उपभोक्तावादी सामाजिकता के सामने असुविधाजनक प्रतीत होती है। इस कहानी के माध्यम से भीष्म साहनी आधुनिकता की उस प्रवृत्ति पर व्यंग्य करते हैं जिसमें मनुष्य रिश्तों को भी सामाजिक उपयोगिता और प्रतिष्ठा के आधार पर देखने लगता है। वृद्ध माँ का मौन प्रतिरोध इस कथा को करुणा से आगे ले जाकर सामाजिक आलोचना का स्वर प्रदान करता है।

वृद्ध और संपत्ति-केंद्रित संबंध:

उदय प्रकाश की 'छप्पन तोले का करधन' में वृद्ध स्त्री और परिवार के बीच संबंध आर्थिक स्वार्थ की कसौटी पर दिखाई देते हैं।¹⁴ वृद्धा के पास कथित रूप से छिपी संपत्ति परिवार के सदस्यों की रुचि का केंद्र बन जाती है। यहाँ वृद्ध व्यक्ति का मूल्य उसके व्यक्तित्व से नहीं, उसके पास उपलब्ध संभावित संपत्ति से निर्धारित होने लगता है। यह कहानी वृद्ध विमर्श को आर्थिक संबंधों से जोड़ती है। वृद्ध व्यक्ति की संपत्ति, पेंशन, मकान या बचत कभी-कभी परिवार में उसकी स्थिति को प्रभावित करती है। जब आर्थिक संसाधन उसके पास होते हैं तो परिवार उसे महत्व देता है; संसाधनों के समाप्त होने पर वही संबंध कमजोर पड़ जाते हैं। इस प्रकार आर्थिक निर्भरता वृद्धावस्था की असुरक्षा को बढ़ाती है। समकालीन हिंदी कथा-साहित्य में यह पक्ष विशेष महत्व रखता है

क्योंकि, इससे पता चलता है कि परिवार का विघटन केवल भावनात्मक कारणों से नहीं होता; संपत्ति, उत्तराधिकार और आर्थिक हित भी पारिवारिक संबंधों की दिशा निर्धारित करते हैं।

वृद्धावस्था और अकेलापन:

वृद्ध-विमर्श का सबसे संवेदनशील पक्ष मनोवैज्ञानिक अकेलापन है। वृद्ध व्यक्ति के जीवन में शारीरिक क्षमता कम होने के साथ सामाजिक भूमिकाएँ भी कम हो सकती हैं। सेवानिवृत्ति के बाद नौकरी से जुड़ी पहचान समाप्त होती है। बच्चे अपने जीवन में व्यस्त हो जाते हैं। मित्रों और समकालीनों की संख्या घटती जाती है। ऐसे में व्यक्ति के सामने यह प्रश्न खड़ा होता है कि वह अपनी शेष जीवन-यात्रा को किस अर्थ के साथ जिए। समकालीन कथा-साहित्य में इस अकेलेपन को केवल 'दुख' के रूप में नहीं बल्कि अस्तित्वगत संकट के रूप में चित्रित किया गया है। वृद्ध व्यक्ति अपने अतीत की स्मृतियों में लौटता है। स्मृति उसके लिए कभी सहारा बनती है तो कभी पीड़ा। वह अपने जीवन के योगदान का मूल्यांकन करता है और वर्तमान में अपनी उपयोगिता खोजता है।¹⁵ पीढ़ी-अंतराल इस स्थिति को और जटिल बनाता है। नई पीढ़ी की भाषा, तकनीक, जीवन-शैली और प्राथमिकताएँ वृद्धों से भिन्न होती हैं। डिजिटल संचार के युग में एक ही घर में रहने वाले सदस्य भी अपने-अपने डिजिटल संसार में व्यस्त हो सकते हैं। इससे पारिवारिक संवाद का स्वरूप बदल गया है। समकालीन वृद्ध-विमर्श इस नई संवादहीनता को भी अभिव्यक्त करता है।

वृद्धावस्था का संकट:

वृद्ध विमर्श में वृद्ध पुरुष और वृद्ध स्त्री की स्थितियों में अंतर को समझना भी आवश्यक है। वृद्ध पुरुष का संकट अक्सर सेवानिवृत्ति, आर्थिक निर्भरता और निर्णय-क्षमता में कमी से जुड़ा दिखाई देता है जबकि वृद्ध स्त्री को उम्र के साथ-साथ लैंगिक असमानता, विधवापन, संपत्ति पर सीमित अधिकार और घरेलू निर्भरता जैसी समस्याओं का सामना करना पड़ सकता है। 'बूढ़ी काकी' और 'चीफ की दावत' जैसी रचनाएँ वृद्ध स्त्री की असुरक्षा को अलग-अलग रूपों में सामने लाती हैं।¹⁶ वृद्ध स्त्री का जीवन परिवार पर अधिक निर्भर होने के कारण उसकी उपेक्षा का प्रभाव भी अधिक गहरा हो सकता है। वह अपने जीवनभर की घरेलू सेवा के बावजूद परिवार में निर्णय लेने की शक्ति से वंचित रह सकती है। समकालीन साहित्य ने वृद्ध स्त्री को केवल 'माँ' या 'दादी' की पारंपरिक भूमिका तक सीमित नहीं रखा है। वह इच्छा, स्मृति, स्वाभिमान और अपने स्वतंत्र अस्तित्व वाली मनुष्य के रूप में भी सामने आती है। यही वृद्ध स्त्री विमर्श को व्यापक नारी विमर्श से जोड़ता है।

उपभोक्तावाद और वृद्ध विमर्श:

समकालीन समाज में व्यक्ति की सामाजिक प्रतिष्ठा को उसकी आर्थिक क्षमता और उपभोग की शक्ति से जोड़ने की प्रवृत्ति बढ़ी है। उपभोक्तावादी संस्कृति में युवा, उत्पादक और सक्रिय शरीर को अधिक महत्त्व मिलता है जबकि वृद्ध शरीर को निष्क्रियता और निर्भरता से जोड़ा जाता है। यह सांस्कृतिक दृष्टि वृद्धों को 'कम उपयोगी' मानने की मानसिकता को जन्म दे सकती है।¹⁷ हिंदी कथा-साहित्य इस मानसिकता का आलोचनात्मक परीक्षण करता है। वृद्ध व्यक्ति की स्मृति, अनुभव और भावनात्मक श्रम को बाजार की भाषा में मापा नहीं जा सकता है। परिवार के लिए जीवनभर किए गए त्याग का कोई आर्थिक मूल्य निर्धारित नहीं किया जा सकता है। फिर भी, जब सामाजिक संबंध आर्थिक गणित से संचालित होने लगते हैं तो यही अमूर्त योगदान अदृश्य हो जाते हैं। वृद्ध विमर्श इस अदृश्यता को चुनौती देता है। वह प्रश्न उठाता है कि क्या मनुष्य का मूल्य उसकी उत्पादकता से निर्धारित होना चाहिए? यदि नहीं, तो वृद्ध व्यक्ति की गरिमा का आधार क्या होगा? इस प्रश्न का उत्तर साहित्य मानवीय संबंधों, संवेदना और सामाजिक उत्तरदायित्व में खोजता है।

करुणा से अधिकार तक:

वृद्ध साहित्य की प्रारंभिक अभिव्यक्तियों में करुणा प्रमुख रही है। वृद्ध व्यक्ति की भूख, बीमारी, असहायता और पारिवारिक उपेक्षा को देखकर पाठक के भीतर सहानुभूति उत्पन्न होती है। किंतु समकालीन वृद्ध विमर्श करुणा से आगे बढ़कर अधिकार और गरिमा का प्रश्न उठाता है।¹⁸ वृद्ध व्यक्ति को परिवार में सम्मान, निर्णय में सहभागिता, आर्थिक सुरक्षा, स्वास्थ्य-सुविधा, भावनात्मक सहारा और स्वतंत्र जीवन का अधिकार होना चाहिए। इस दृष्टि से

वृद्ध विमर्श केवल साहित्यिक विषय नहीं बल्कि सामाजिक न्याय का प्रश्न है। समकालीन हिंदी कथा-साहित्य में वृद्ध पात्रों का बढ़ता हुआ प्रतिनिधित्व इस बात का संकेत है कि समाज अपने भीतर मौजूद एक महत्वपूर्ण लेकिन उपेक्षित वर्ग को पुनः देखने की कोशिश कर रहा है। नई सदी के हिंदी उपन्यासों और कहानियों में वृद्धों के जीवन-संघर्ष, अकेलेपन और पारिवारिक विघटन को लगातार रेखांकित किया गया है।¹⁹

साहित्यिक प्रतिरोध और संवेदना:

साहित्य समाज का प्रत्यक्ष समाजशास्त्रीय दस्तावेज नहीं होता फिर भी वह सामाजिक अनुभवों की गहरी अंतर्दृष्टि प्रदान करता है। वृद्ध विमर्श के संदर्भ में हिंदी कथा-साहित्य की भूमिका दोहरी है। एक ओर वह वृद्धों की पीड़ा को दृश्य बनाता है, दूसरी ओर पाठक को अपने पारिवारिक व्यवहार पर पुनर्विचार करने के लिए प्रेरित करता है। 'वापसी' का गजाधर बाबू 'चीफ की दावत' की माँ और 'छप्पन तोले का करधन' की वृद्धा अलग-अलग सामाजिक परिस्थितियों का प्रतिनिधित्व करते हैं किंतु उनके अनुभवों में एक समान सूत्र है-मानवीय गरिमा की तलाश।²⁰ इस दृष्टि से वृद्ध विमर्श साहित्य में प्रतिरोध की मानवीय भाषा निर्मित करता है। वह वृद्ध व्यक्ति को 'बोझ' कहे जाने की मानसिकता के विरुद्ध खड़ा होता है और यह स्थापित करता है कि उम्र बढ़ना सामाजिक उपयोगिता समाप्त होना नहीं है। अनुभव, स्मृति, नैतिक चेतना और पीढ़ियों को जोड़ने की क्षमता भी सामाजिक संपदा हैं।

उपसंहार:

समकालीन हिंदी कथा-साहित्य में वृद्ध विमर्श बदलते भारतीय परिवार और सामाजिक मूल्यों की जटिलताओं को समझने का एक महत्वपूर्ण माध्यम है। संयुक्त परिवार से एकल परिवार की ओर संक्रमण, नगरीकरण, रोजगारगत गतिशीलता, वैश्वीकरण, उपभोक्तावाद और व्यक्तिवाद ने वृद्धों की पारंपरिक भूमिका को प्रभावित किया है। इसका परिणाम अनेक स्तरों पर सामने आता है- अकेलापन, उपेक्षा, आर्थिक असुरक्षा, पीढ़ी-अंतराल, निर्णय-प्रक्रिया से बहिष्कार और आत्मसम्मान का संकट। समकालीन रचनाएँ स्पष्ट करती हैं कि वृद्धों की स्थिति परिवार और समाज की संरचना से निर्मित होती है। अतः समाधान भी केवल वृद्धों की देखभाल तक सीमित नहीं होना चाहिए; परिवार में संवाद, पीढ़ियों के बीच सम्मान, आर्थिक सुरक्षा, सामाजिक सहभागिता और वृद्धों की निर्णयात्मक भूमिका को पुनर्स्थापित करना आवश्यक है।

अंततः समकालीन हिंदी कथा-साहित्य का वृद्ध विमर्श हमें यह समझाता है कि किसी समाज की मानवीयता का मूल्यांकन इस बात से भी किया जाना चाहिए कि वह अपने वृद्ध सदस्यों के साथ कैसा व्यवहार करता है। वृद्ध व्यक्ति अतीत का अवशेष नहीं बल्कि वर्तमान की स्मृति और भविष्य की सामाजिक चेतना का सेतु है। इसलिए, वृद्ध विमर्श को करुणा के बजाय गरिमा, दया के बजाय अधिकार और अलगाव के बजाय पीढ़ियों के संवाद की दिशा में आगे बढ़ना चाहिए।

संदर्भ ग्रंथ सूची:

1. Gupta, A. (2025). Discourse on the elderly in Hindi short stories. Research Ambition: An International Multidisciplinary E-Journal, 10(3), pp:19–22.
2. Kumbhar, N. H. (2024). 21वीं सदी के हिंदी उपन्यासों में चित्रित हाशिए का समाज. pp:89.
3. Mehra, D. (Ed.). (2021). हिंदी कथा साहित्य में वृद्ध विमर्श. उत्कर्ष पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स. कानपुर. pp:52.
4. राजौरिया, शि. कु. (2017). वृद्धावस्था विमर्श और हिंदी कहानी. अद्वैत प्रकाशन. pp:98.
5. शर्मा, गो. (2023). समकालीन हिंदी कथा साहित्य में वृद्ध विमर्श. अपनी माटी. pp:62.
6. साहनी, भीष्म. (1956). चीफ की दावत तथा अन्य कहानियाँ. राजकमल प्रकाशन. दिल्ली. pp:48.
7. प्रेमचंद. (1936). मानसरोवर. राजकमल प्रकाशन. दिल्ली. pp:28-51.
8. प्रियंवदा, उषा. (2015). वापसी तथा अन्य कहानियाँ. राजकमल प्रकाशन. दिल्ली. pp:38-72.

9. प्रकाश, उदय (1985). छप्पन तोले का करधन तथा अन्य कहानियाँ. वाणी प्रकाशन. दिल्ली. pp:48-63.
10. Bansura, S. R., & Middha, P. L. (2023). समकालीन हिंदी उपन्यासों में वृद्ध जनों का जीवन-संघर्ष और सामाजिक यथार्थ. IAJESM, 20(3), 841–844.
11. Grover, K. (2020). Concerns of aged deliberation in Hindi novels of 21st century. ResearchGate.
12. फताटे, प., & प्रजापति, अ. (2024). काशीनाथ सिंह के कथा साहित्य में वृद्धावस्था की अभिव्यक्ति. अपनी माटी. pp:36.
13. किस्कु, बी. (2026). चन्द्रकांता की कहानियों में वृद्ध विमर्श. International Journal of Science and Humanities, 3(5), pp:380–386.
14. कोमल. (2025). बल्लभ डोभाल की कहानियों में वृद्ध जीवन की अभिव्यक्ति. ShodhSangamPatrika, 2(4), pp:141–146.
15. Nijhawan, S. (2019). Gendered lives in vernacular fiction: Redefining family in Hindi short stories of the early 1940s. The Indian Economic & Social History Review, 56(1). pp:81.
16. बिडी, रा. इ. (2023). हिन्दी साहित्य की रचनाओं में 'वृद्ध विमर्श' का चित्रण. अपनी माटी. pp:32.
17. साहनी, भीष्म. (2019). 'चीफ की दावत' कहानी की आधुनिक युग के संदर्भ में समीक्षा. JASRAE, 16(2), pp:486–489.
18. Sharma, G. (2023). समकालीन हिंदी कथा साहित्य में वृद्ध विमर्श. अपनी माटी. pp:48.
19. Bansura, S.R., & Middha, P. L. (2023). समकालीन हिंदी उपन्यासों में वृद्ध जनों का जीवन-संघर्ष और सामाजिक यथार्थ. IAJESM, 20(3), pp: 841–844.
20. फताटे, प., & प्रजापति, अ. (2024). काशीनाथ सिंह के कथा साहित्य में वृद्धावस्था की अभिव्यक्ति. pp:41.

Disclaimer/Publisher's Note: The views, findings, and opinions expressed in this publication are solely those of the author(s). The publisher and editorial team are not responsible for any errors, claims, or consequences arising from the use of the published content.